उदय-भारत



I.99.८

ज्वार-भाटा

(कवि के प्रसिद्ध गीतोंका कथात्मक संग्रह)

डा० धीरेन्द्र वर्मा पुस्तक-संग्रह

प्रो० श्यामनंदन प्रसाद 'किशोर'
एम० ए० (स्वर्ण-पदक.)
बिहार विश्वविद्यालय

माता यशोदा-स्मृति-माला—२

स्वत्त्वाधिकारी—लेखक

प्रथम संस्करण—२०१२

चित्रकार—श्री वैद्यनाथ गुप्त

फोटोकार—बी० एन० स्टूडियो

तीन रुपये

आठ आने

प्रकाशकीय

भारत के दो महान् प्रकाशकों के अर्थ-जाल से मुक्त होकर 'ज्वार-भाटा' 'किशोर'जी के पाठकों की सेवा में कुछ विलम्ब से आ रहा है। इस संग्रह की एक-एक रचना पत्र-पत्रिकाओं, कवि-सम्मेलनों और रेडियो के माध्यमों से हिन्दी-जनता की ज़ुबान पर चढ़ चुकी है। पुस्तक-प्रकाशन के पूर्व ही देश के कोने-कोने से सैकड़ों व्यक्तियों द्वारा 'ज्वार-भाटा' की माँग आ चुकी है; इससे भी इसकी लोक-प्रियता का अनुमान लगाया जा सकता है!

कम समय में पुस्तक के यथासम्भव सुन्दर और शुद्ध मुद्रण के लिए बोस प्रेस के अध्यक्ष, पत्रकार श्री अरुण कुमार बोस और व्यवस्थापक श्री जनक साहु धन्यवाद के अधिकारी हैं। यत्र-तत्र प्रूफ की कुछ भूलें रह गयी हैं; यथा पृष्ठ २४ की आठवीं पंक्ति में 'पिच्छल' की जगह 'चंचल', पृष्ठ ३६ में 'शबनम मेरी' की जगह 'शबनम मेरे', पृष्ठ ६८ की ११वीं पंक्ति में 'ही है' की जगह केवल 'ही', पृष्ठ ८० की दूसरी पंक्ति में 'उदधि' की जगह 'इदधि' आदि। एकाध स्थल पर 'न' का 'ण' और 'स' का 'श' भी छप गया है। आशा है, कृपालु पाठक उन्हें सुधार कर पढ़ेंगे।

गीत-क्रम

प्रतीक-गीत

दर्द के तार पर गा रहा गीत मैं।
देखता है समय के नयन से विजन—
क्यों लुटाकर सुरभि है न रोता सुमन।
सृष्टि को दृष्टि दी लाभ की है नयी—
हारमें ही सदा पा रहा जीत मैं।

तारकों के फफोले भुलाकर गगन,
है उषाके अधर पर विहँसता मगन!
वेदना प्रेरणा दे रही, इसलिए,
मानता हूँ मरण को सदा मीत मैं।

शून्य मंदिर, फटी मोह की यामिनी,
और प्रतिमा पुजारिन ठगी-सी बनी!
प्रेम की एक सीमा मिलन में सदा;
पर विरह का प्रणय कल्पनातीत मैं!

हँस रही पूर्णिमा क्यों लिए दाग है?
दीप से क्यों दिवा को न अनुराग है?
फूल की लालसा शूल पर चल रही,
प्रीत-पथ की न कोई नयी रीत मैं!
दर्द के तार पर गा रहा गीत मैं।



गीतों की गाथा

बहुत दिन हुए—बहुत दिन, जब कि एकबार एक मनु-पुत्र अपनी तपस्या से सशरीर स्वर्ग पहुँच गया। स्वर्ग, जहाँ के वृक्षों में हीरे और माणिक फलते हैं, जहाँ की सुन्दरियाँ चिरन्तनयौवना होती हैं, जहाँ बिना परिश्रम के, आयास ही सम्पूर्ण मनोकामनाओं की पूर्त्ति होती है, जहाँ ऋद्धि-सिद्धियाँ आठों पहर हाथ जोड़े खड़ी रहती हैं, जहाँ माता-पिता, भाई-बहन के विभिन्न सम्बन्ध नहीं रहते—सभी पुरुष मित्र हैं, सभी नारियाँ प्रियतमा। उस भूलोकवासी को स्वर्ग में आनन्द से अधिक कुतूहल हुआ, तृप्ति से अधिक असन्तोष! वहाँ कल्पतरु की शीतल छायामें बैठ कर वह अपनी आँखों को तृप्त करता रहा, लेकिन उसके कान प्यासे ही रहे। उसने उस अनन्त हरियाली के बीच से किसी पीले, असहाय पत्ते को झड़कर मर्मर संगीत सुनाते नहीं पाया। उसने सुर-सभाओं में रम्भाओं और अप्सरियों के मादक संगीत सुने, लेकिन उन्हें थक कर रुके चरणों से झुक कर अँगड़ाई लेते नहीं देखा। उसने उन अक्षत यौवनाओं की आँखों में वासना की जलती दीप-शिखाएँ देखीं, प्रेम के अमृत-कण नहीं! उसने संयोग के कुसुमित अधर देखे, प्रतीक्षा में विस्फारित गीली पलकें नहीं। प्राप्ति, सर्वसुलभता और भाव के इस अनोखे लोक में अभाव का अभाव खटकता रहा। उसका मन बारहमासी पूर्णिमा से ऊब गया, वह अमावस्या की घनी-काली चादर पर तारक-रत्नों की जाज्वल्यमान प्रभा ढूँढ़ने लगा। वह बसन्त के महमह उपवनों में, वृक्षों की नंगी डालियों की ओट में, नियति के व्यंग्य की भाँति मुस्काने वाले दूज के चाँद को देखने को व्यग्र हो उठा। वह सौन्दर्य की दुर्लभ अनुभूति के लिए कुरूपता की खोज करने लगा। तात्पर्य यह कि वह अपने नन्हे-से मन में समुन्दर की प्यास पालने को मचल उठा! फलतः वह प्रतिक्रिया-स्वरूप, देवताओं की आलोचना करने लगा। स्वर्ग-श्री की निस्सारता पर व्याख्यान देने लगा और मुँह लटकाये उदास घूमने लगा। अमरों के इस सौन्दर्य-धाम में कुहराम मच गया—'अमृत के प्रति मृत के ऐसे

कुत्सित विचार! भाग्यवानों के महल में ऐसे मनहूस का वास! निकालो, निकालो! इसे दूर हटाओ; निकालो!' स्वर्ग के सभासद चीख उठे! विश्वोदपियों के आनन-कमल मनु-पुत्र की उपेक्षा से और भी लाल हो उठे!—तब अमृत के नशा से लुढ़के पड़े विधाता चौंक कर तन बैठे!...बेले के कोमल गजरों से बाँध कर वह मनु-पुत्र विधाता के सामने लाया गया।

विधाता ने कहा—"तुमने देवताओं और ऋषियों का अपमान किया है; स्वर्ग की पावन भूमिको हीन समझा है। तुम्हें मैं शाप देता हूँ—'तुम पृथ्वी पर लौट जाओ! जाकर वहाँ की असीम यंत्रणाओं में झुलसो, तपो! तुम्हें वहाँ चैन नहीं होगा। तुम्हें दूसरों की पीड़ाएँ भी सतायेंगी। तुम अश्रु को अमृत समझोगे, पीड़ा को वरदान! तुम यौवन के उन्मत्त वासन्ती वैभव के पीछे आती हुई जर्जर वृद्धता को देखकर गम्भीर हो उठोगे! दूसरों की रूखी-सूखी रोटियों को देख कर, अपने सामने की भरी-पूरी थालियों को तुम उदासीन भाव से दूर हटा फेंकोगे! तुम अभाव में भाव की झाँकी देखोगे! जाओ...!"

विधाता कुछ देर मौन रहे! शायद किसी उत्तर की प्रतीक्षा करते रहे! लेकिन अपराधी को सहज मौन देख कर, कुछ सोच कर, वे बोल उठे—"मुझे तुम्हारे पिछले पुण्यों का स्मरण है, जिसके बल पर तुम स्वर्ग तक आए थे। अतएव, तुम्हारी सजा को मैं थोड़ा हलका कर देता हूँ! साधारण मनुष्य की असह्य वेदना आँसू बनकर बह निकलती है; लेकिन तुम विशिष्ट जन हो, तुम्हारी वेदना गीत बनकर फूटेगी। साधारण व्यक्ति के दुख-दर्द नश्वर होंगे, तुम्हारी आह-कराह तुम से भी अधिक दिनों तक जीवित रहेगी—गूँजती तड़पती,—गीत बनकर!"
—और वही अभिशापित मनु-पुत्र कवि बनकर देवताओं के स्वर्ग से नरलोक में लौट आया!

× × × ×

आज के कवि भी सम्भवतः उन्हीं स्वाभिमानी और अभिशप्त कवियों की परम्परा में होने के कारण क्रान्ति-प्रिय क्रान्तिदर्शी हैं। मिट्टी से बनकर, मिट्टी पर रहकर, वे मिट्टी का गान गाना चाहते हैं! वे पृथ्वी की क्रीड़ाओं से मुक्त होकर, यहाँ के सुख-दुख की आँख-मिचौनी को छोड़कर अकेले स्वर्ग की प्राप्ति नहीं

चाहते ! वे 'भूतल को ही स्वर्ग बनाने' के अभिलाषी हैं ! फलतः काव्य का यह आधुनिक काल मानवता के विशाल मन्दिर का अर्घ्य-सुमन बन गया है। आज की कविता न तो 'राधिका-गोविन्द सुमिरन को बहाना' है और न पूर्ण रूप से 'स्वान्तः सुखाय' ही ! वह न तो चारणों का वीर-शृङ्गार रस से पूर्ण इसलोक के आश्रयदाता सम्राटों का प्रशस्ति काव्य है और न भक्ति से ओत-प्रोत उसलोक के शरणदाता परमेश्वर का लीला-गान ! न इसे निर्गुणियों की अतिशय सूक्ष्मता और अतीन्द्रीयता कहा जा सकता है और न रीति-रसिकों की निरावरणता और मांसलता। काव्यका यह काल अपनी परम्पराओं और पूर्वमान्यताओं से पोषित हो कर भी किसी एक धारा या लीक पर चलने का आग्रही नहीं है। हिन्दी के वर्तमान काल में जितनी विविधता और प्रयोग-प्रियता है, उतनी पहले कभी नहीं दीख पड़ी थी। यही कारण है कि आज की काव्य-धारा को एक वाद या शीर्षक के अधीन कर देना अत्यन्त कठिन हो गया है।........

फिर मैं अपनी कविताओं के सम्बन्ध में क्या कहूँ? न तो मैं वादों की संकीर्ण सीमाओं में कभी बँधा रहा हूँ और न मैंने कविता की कोई परिभाषा रचने की ही धृष्टता की है ! प्रेम, भक्ति, कला आदि की भाँति ही कविता की कोई भी परिभाषा अतिव्याप्ति या अव्याप्ति दोष से बच नहीं सकती। फिर भी अपनी कविताओं के सम्बन्ध में अपने विचारों और मान्यताओं को परिभाषा का दामन पकड़े बिना भी, काव्य-शास्त्र की लम्बी-चौड़ी भूमिका के अभाव में भी, कुछ कहा जा सकता है।

'ज्वार-भाटा' एक 'मुक्तक-प्रबन्ध' है; मुक्तक : क्योंकि इसमें संगृहीत सभी कविताएँ गीत या प्रगीत हैं; प्रबन्ध : क्योंकि इन कविताओं को एक झीने कथा-सूत्र में पिरोया गया है। जिस प्रकार नाश-निर्माण, हास-रुदन, जीवन-मरण आदि का एक निश्चित क्रम होता है, उसी प्रकार जीवन में,—प्रेममय जीवन में क्रमिक रूप से आनेवाले भावों, उच्छ्वासों और रसानुभूतियों को, शब्दों की डोर में अनुस्यूत करने की चेष्टा इस पुस्तक में की गयी है। स्वतंत्र रूप से जहाँ एक ओर इन रचनाओं के तरल अनुभवों को देखा जा सकता है, वहाँ दूसरी ओर सम्मिलित रूप से इन्हें पढ़ कर किन्हीं दो नन्हें प्राणों की जीवन-कहानी का परिचय

प्राप्त किया जा सकता है। यह जीवन-कहानी 'साधारणीकरण' की उदात्त प्रक्रिया के संयोग से अपनी वैयक्तिक क्षुद्रता खोकर मानवमात्र की गाथा बन गयी है।

प्रकृति मानव की आदि सहचरी है और कवि अत्यधिक संवेदनशील मानव; अतएव, कवियों के चेतन, उपचेतन और अचेतन में किसी न किसी रूप में प्रकृति की लघुता, विराटता, कमनीयता या भयंकरता का प्रभाव अवश्य ही सुरक्षित रहता है, जो समय-असमय पर उनकी वाणियों से अनायास फूटा करता है। मुझे गगन की शून्यता, निर्झर की अविरामता, काँटों की व्यावहारिकता, फूलों की क्षणभंगुरता और सागर की विशालता बहुत अधिक प्यारी लगती रही है। प्रकृति के इन राशि-राशि स्वरूपों में मुझे मानव-जीवन के विभिन्न कार्य-कलापों के दर्शन होते हैं। लगता है, मनुष्य के सुख-दुख, अश्रु-हास—सब कुछ प्रकृति के दर्पण में स्पष्ट रूप से प्रतिबिम्बित होते हैं।

कभी-कभी भिन्न प्रतीत होनेवाली दो वस्तुओं में बहुत अधिक समानता दीख पड़ती है। सागर और मानव-मन में मुझे इसी न्याय के अनुसार कई दृष्टियों से साम्य दीखता है। सागर की भाँति मानव-मन भी विशाल और अगम है। जिस प्रकार सागर में लहरें उठा करती हैं, वैसे ही मानव-मन में इच्छाओं और कामनाओं की अनन्त उर्मियाँ हिलोरें लेती रहती हैं। जहाँ सागर के अन्तस्तल में पहुँच कर मूल्यवान मोती प्राप्त किए जा सकते हैं, वहाँ अपनी सदाशयता और व्यक्तित्व से मानव-मन में प्रवेश पाकर उसमें मनोरम विचारों और भावों को ढूँढ़ा जा सकता है—क्योंकि ऐसे व्यक्तियों का अभाव नहीं है, जो ऊपर से कठोर और शुष्क लगने पर भी भीतर से मधुर और मूल्यवान हैं। इतना ही नहीं, जिस प्रकार सागर के अन्तर में जाज्वल्यमान सीपियों और शंखों के साथ ही बड़े-बड़े भयानक हिंस्र जन्तु रहते हैं, उसी प्रकार मनुष्य के हृदय में भी सत् प्रवृत्तियों के साथ असत् प्रवृत्तियों का वास रहता है।

एक बात और भी!

महीने भर की आकुल प्रतीक्षा के बाद एक दिन सागर को पूर्णिमा के खिलखिलाते चाँद के दर्शन होते हैं। और तब, वह अपनी पूरी शक्ति, सारी

उमंगों और अनुरागों के साथ उमग कर उससे एकाकार होने को ऊपर, बहुत ऊपर उठता है; लेकिन उसे निराशा ही हाथ लगती है। फिर तो उसकी उमंगों और अभिलाषाओं की ज्वार भाटा बन कर शान्त हो जाती हैं—शत-शत बूँदों में विकीर्ण हो जाती हैं। लेकिन, तब भी उसे सन्तोष रहता है कि उसका प्रिय—वह पूर्ण शशि, उसके अन्तस्तल में प्रतिबिम्बित होता रहता है। और इतना सा सम्बल लिए सागर महीने भर लघु-लघु तरंगों में विरह-प्रतीक्षा के गान गाता रहता है। ठीक कुछ ऐसी ही स्थिति मानव-मन की भी है। मनुष्य अपने जीवन में विकल प्रतीक्षा और कठिन साधना के बाद अपने मनोवांछित प्रिय के दर्शन कर पाता है, लेकिन उसकी पूर्ण प्राप्ति उसे नहीं होती। होने पर भी तृप्ति कहाँ! सन्तोष तो प्रेम का मृत्यु-दूत है! फलतः मनुष्य जीवन भर चाँद-जैसे किसी आकर्षण-केन्द्र से प्रभावित और अनुप्राणित होकर अपने अन्तर में ज्वार-भाटों का सामना करता रहता है! आशाओं–निराशाओं के आरोह-अवरोह से उसके जीवन के तार अनायास ही बजते रहते हैं।

'ज्वार-भाटा' तीन लहरों और पचहत्तर लघु उर्मियों का एक समूह है। प्रथम खण्ड 'मिलन-लहर' के पचीस गीतों में दो प्राणों की प्रणय-गाथा ज्वार की प्रबल स्थिति में है, दूसरे खण्ड 'विदा-लहर' में ज्वार उतर कर भाटे के रूप में परिणत होने जा रही है और अन्तिम खण्ड 'मिलन-लहर' में उमंगें और महत्त्वाकांक्षाएँ भाटा के रूप में परिणत हो गयी हैं। प्रथम गीत से पचहत्तरवें गीत तक एक क्रम परिलक्षित होता है। कोई व्यक्ति, किसी की प्रबल पुकार पर, स्नेह-दुलार पर खिंचता आगे बढ़ता है, फिर धीरे-धीरे उन दोनों में घनिष्टता बढ़ती जाती है। पर एक क्षण ऐसा आता है, जब वे दोनों बिछुड़ने को लाचार हो जाते हैं और धीरे-धीरे एक दूसरे से विलग हो जाते हैं'—और अन्त में एक के लिए मृदुल, सघन स्मृतियाँ लेकर एकाकी तिल-तिल जलने के सिवा दूसरा चारा ही क्या रह जाता है! रोना और गाना.. वियोग के ये ही तो दो स्वरूप हैं।

अधिक क्या कहूँ? अपने स्नेह पूर्ण पाठकों के समक्ष उनके प्रिय गीतों का यह संकलन रखकर मैं गौरव और विनम्रताका अनुभव कर रहा हूँ। 'कॉलरिज'

ने लिखा है—Poetry is the best words in the best order; मैंने भी अपनी अनुभूतियों को इसी आदर्श पर ढालने की चेष्टा की है। यह संग्रह हिन्दी-साहित्य के लिए कितने मूल्य का होगा, यह तो विज्ञ पाठक ही जानें, मुझे तो रह-रह कर अपने पूर्वजों के ये शब्द स्मरण हो आते हैं—

'तू कहता कागद की लेखी
मैं कहता आँखिन की देखी!'

× × ×

'कवित विवेक एक नहिं मोरे,
सत्य कहूँ लिखि कागद कोरे!'

एल० एस० कॉलेज
मुजफ्फरपुर

विनीत,
श्या० प्र० 'किशोर'





आशा किशोर, एम० ए०

अपनी पत्नी आशा को

क्या अदेय, जो बने न तेरे
लिए ललक उपहार ?
दानिनि ! जब मेरे अन्तर पर
ही तेरा अधिकार !

× × ×

मेरी दुर्बलता से शोभित—
भुक्तक - भुक्ता - पूजित—
संगिनि !—तू 'पूर्णिमा',
'ज्वार-भाटा' यह सहज सम्भावित !

—'किशोर'

मिलन-लहर

मिलन, विरह का बचपन,
दुख का उज्ज्वल, मोहक रूप!
विरह, शिशिर की रात,
मिलन, जैसे जाड़े की धूप!

[इस पुस्तक के सभी गीतों के प्रकाशन के अधिकार के लिए प्रकाशक
'ऑल इन्डिया रेडियो' का आभारी है।]

एक

"कोई मुझे पुकार रहा है !
जाना होगा ! जाना होगा !!

पपीहरा के पिया - पिया से,
जड़-चेतन के हिया - हिया से,
भेज कौन संदेश रहा है,
मुझको ध्यान लगाना होगा !
जाना होगा ! जाना होगा !

तरु - तरु के मोहक मर्मर से,
पल्लव - टहनी के मृदुकर से,
कोई मुझे बुलावा देता,
निश्चय पैर बढ़ाना होगा !
जाना होगा ! जाना होगा !

ले आँखों में सावन के घन,
प्राणों में बिजली की तड़पन,
कोई मुझे दुलार रहा है,
जाकर नेह निभाना होगा !
जाना होगा ! जाना होगा !

संघर्षों से मैं मुँह मोड़े,
सबसे नाता - रिश्ता तोड़े,
बन्धन से ही भाग रहा था,
अब तो नीड़ बसाना होगा !
जाना होगा ! जाना होगा !!"



दो

मंजिल पाने में क्या देरी ?

चलकर अपनी थकन मिटाता !
जलकर अपनी जलन मिटाता !
भले लाख उपचार करे जग,
मेरा दर्द दवा है मेरी !

मंजिल पाने में क्या देरी ?



तीन

मुझसे दूर तुम्हारी बस्ती !

कठिन पंथ पर खोये सम्बल;
मगर पिराये पाँव चला चल !

हरगिज मिटने कभी न दूँगा
मधुर मिलन तक अपनी हस्ती !
मुझसे दूर तुम्हारी बस्ती !



चार

आज मैं तुमसे मिलूँगा !

तोड़कर पाषाण - कारा,
ले विकल शत स्नेह-धारा,

मैं तुम्हारी प्राण - सरिता
के लिए निर्भर बनूँगा !
आज मैं तुमसे मिलूँगा !

कंटकों की गोद में पल,
डोर में बँध-बिँध अरुण-दल

मैं तुम्हारे ही गले का
हार बनने को खिलूँगा !
आज मैं तुमसे मिलूँगा !

वेदना भी कब अकेली ?
धूप छाया की सहेली !

मैं सजल मोती, तुम्हारी
नयन - सीपी में ढलूँगा !
आज मैं तुमसे मिलूँगा !



पाँच

आशाओं - अभिलाषाओं का चंचल झलमल वात रे !
मन क्यों मेरा डोल रहा है, ज्यों शीशम का पात रे !

दूर नगर है, कठिन डगर है,
धूप - छाँह की माया !
है मालूम न किस इंगित पर
फिर भी बढ़ता आया !

कैसे पहुँचूँ नियत समय पर पास तुम्हारे साँवरे ?
चंचल करती मंजिल का पथ नयनों की बरसात रे !

प्राणों के पाहुन तन की
बंशी पर सरगम साध रहे हैं,
साँसों के दो निठुर पहरुये
जीवन को कस बाँध रहे हैं !

क्यों उद्विग्न रहा करता मन, हाय समझ यह बात भी—
विरह-पंक में खिलता महमह मधुर मिलन-जलजात रे !

सूख सरोवर जाते, लेकिन
एक बूँद की प्यास न जाती !
आँसू की रिमझिम फुहियों से
यौवन की लतिका मुस्काती !

बन्दनवार सजे सपनों के, चौमुख दिये हुलास के,
इच्छा की फुलझड़ियों से शोभित उठती बारात रे !



अः

मिली तुम बीच राह में प्राण !

विकलता, आकर्षण अनजान
लग रहे सहसा एक समान !

बना श्रद्धा - आनन्द - विभोर,
चला जब था मंदिर की ओर,
पुजारी को था कब यह ज्ञात–
कर रहे भगवन् उसका ध्यान ?

मिली तुम बीच राह में प्राण !

तुम्हारा पा अदृश्य संकेत,
चला मैं अपना छोड़ निकेत;
पता था लेकिन मुझको नहीं
सुनोगी तुम मेरा आह्वान !

मिली तुम बीच राह में प्राण !



सात

गयी विरह् की बीत रात रे !

उड़े पंख मन - मौन-भ्रमर के ।
खुले नयन जीवन - अम्बर के ।
किरण - करों के खिले स्पर्श से
यौवन का मृदु नीरजात रे !

गयी विरह् की बीत रात रे !

ज्योति - भरा संसार मिला है ।
जो कुछ है, साकार मिला है ।
अब न रही वह केवल सपनों
में छाया - सी सुखद बात रे !

गयी विरह् की बीत रात रे !

भला, द्वन्द्व के तम का जाना !
प्रियतम को मैंने पह्चाना !
आया ले संदेश नया है,
आज मिलन का नव प्रभात रे !

गयी विरह् की बीत रात रे !



आठ

कैसे स्वागत करूँ तुम्हारा ?

गीली पलक मधुर दर्शन से,
उमड़ा अन्तर सुख-वर्षण से।
सुध - बुध मेरी खोयी - खोयी,
तन - मन मेरा हारा - हारा !

कैसे स्वागत करूँ तुम्हारा ?

शिथिल चरण की भारी आहट,
बता तुम्हारी रही थकावट।
मैं आनन्द - विभोर, अचेतन
कैसे दुख यह हरूँ तुम्हारा ?

कैसे स्वागत करूँ तुम्हारा ?

तुम में मिल कर मैं खो जाऊँ
दृग में प्रियतम के सो जाऊँ !
सदा नदी को बाँध बाँह में
रखता निश्छल अचलकिनारा !

कैसे स्वागत करूँ तुम्हारा ?



नौ

तुम मिली, जैसे विजन को सुमन की मुस्कान !

शून्य मंदिर में अचानक
यह विकल पद - चाप !
सच पुजारी का हुआ क्या
स्वप्न अपने आप ?

चिर विरह की यामिनी में, तुम मिलन अनजान !

आज मरु में बह पड़ी क्यों
भूलकर रस - धार ?
मुखर पतझड़ में हुआ
कैसे भ्रमर - गुंजार ?

तुम मिली जैसे मरण को साँस का प्रतिदान !

आज से तो जिन्दगी यह
रह न पायी भार !
अब न गूँथेगी जवानी
आँसुओं का हार !

डूबते का एक तिनका ही सबल जलयान !



दस

अब न रहा जीवन - घट रीता।

सरित प्यार का हर सीकर है।
रस - अथाह मेरा अन्तर है।

जलन-तपन की ऋतु लो बीती,
प्यास - भरा वह दुर्दिन' बीता !

भला न लगता जग को हँसना।
और, किसी दो दिल का बसना।

पर मैंने तो दुर्बलता से
ही दुनिया के मन को जीता !



ग्यारह

जगत को होती शंका आज, लिखूँगा अब मैं कैसे गीत !

जलन के मीठे, प्यारे गीत।
दर्द के ये बेचारे गीत।
मिली जब मुझको जी भर प्रीत,
मिली जब मुझको जीवन-मीत,

जगत को होती शंका आज, लिखूँगा अब मैं कैसे गीत !

मगर क्यों नहीं समझते लोग
महज इतनी छोटी-सी बात—?
धरा को सतरंगी सुषमा
सदा से देती है बरसात।

विश्व की वीणा में इसलिए
भरूँगा नव सुर, नव संगीत !
रचूँगा जीवन-रण के गीत।
मनोरम मन-उपवन के गीत,

जगत को होती शंका आज, लिखूँगा अब मैं कैसे गीत !

पिकी बतलाती पतझड़ को
कूक का यह रहस्य अनमोल—
उमंगें देतीं मधु ऋतु की
सुधा वाणी में मेरी घोल।

सरसता उफनाती बन गीत—
मिला करती जब मन को प्रीत,
बदल जाता जब दुखद अतीत,
मिला करता जब मन को मीत।

जगत को होती शंका आज, लिखूँगा अब मैं कैसे गीत !

भरा करते मधुमय संगीत
न केवल टूटे - रूठे तार !
प्रेरणा के बनते हैं स्रोत
न केवल कच्चे, असफल प्यार !

रहे मीठे सपने आबाद,
गयी केवल दुख की निशि बीत !
भाव की सरिता अगम पुनीत,
लहर बन झरते कुसुमित गीत !

जगत को फिर क्यों शंका आज, लिखूँगा अब मैं कैसे गीत !



बारह

तुम हँसती, झड़ती शेफाली !

चुपके मिलन-यामिनी में खिल,
श्वास-सुरभि से पल-पल हिल-हिल

लद जाती कामना-कली से
जीवन की हर डाली-डाली !
तुम हँसती, झड़ती शेफाली !

तुम मिलती, मिलना जीवन है
हँसता प्राणों का उपवन है।

धुल जाती है हास - रश्मि से
कठिन निराशा की अँधियाली !
तुम हँसती, झड़ती शेफाली !

यह न चाह, जो पल-पल घटती।
जलन चातकों की कब मिटती ?

पी-पी कर नयनों से छवि को,
मैंने अपनी प्यास बढ़ा ली !
तुम हँसती, झड़ती शेफाली !



तेरह

सपने मेरे, आँख तुम्हारी !

जीवन-निधि तुम सबसे प्यारी
फिर भी मेरी हो लाचारी ।

मैं उड़ने की आकुलता हूँ,
लेकिन भींगी पाँख तुम्हारी !
सपने मेरे, आँख तुम्हारी !



चौदह

मेघ भरी पलकों में अपनी,
किसने बन्द किया पूनम को ?
अपने नन्हें–से प्राणों में,
कैसे साध लिया सरगम को ?

\+ + +

यह बाड़व की ज्वाला–जीवन;
कैसी मोहन है यह माया—
मरु के राही को भी मिलती
अपने तन की संगी छाया।
कैसे बँध जाती है धारा,
दो तटके दुर्बल संयम में ?
सघन गगन में हँसती बिजली,
जलते प्रखर अमा में तारे;
कठिन शिखर पर गिरि के चढ़ती,
जाने, किसके लता सहारे।
कैसे आशाओं की किरणें,
मिल जातीं जीवन के तम में ?
भेद नहीं विश्वास समझता—
मोम और पत्थर के भीतर।
निर्झर और बँधे कूपों में
तीखी प्यास न पाती अन्तर।
कैसे खो देता अपने को,
कोई तुनुक किसी निर्मम में ?



पन्द्रह

कजरी मेरी, नीर तुम्हारे ?

श्यामल-श्यामल बादल छाये ।
सूखे गीत हरे हो आये ।

मेरा दिल तो एक निशाना
लेकिन सौ-सौ तीर तुम्हारे ।
कजरी मेरी, नीर तुम्हारे ?



सोलह

शबनम मेरे, रात तुम्हारी !

मैं रो-रो कर तुम्हें हँसाता।
मोती बन-बन तुम्हें सजाता।

मेरा भोलापन लुटने में,
अगर-मगर की बात तुम्हारी !
शबनम मेरे, रात तुम्हारी !



सत्रह

मंदिर मेरा, पूज तुम्हारी !

तुमसे खुद को लाख बचाता।
मगर अजब यह कैसा नाता–

मैं हूँ बीन बजाता अपनी
मगर निकलती गूँज तुम्हारी !
मंदिर मेरा, पूज तुम्हारी !



अठारह

विरह–मिलन के दो तारों से बजता है संसार !

मृदु आरोह, अधीर मिलन है।
औ' अवरोह, कठिन बिछुड़न है।

नहीं एक का भी अभाव भर सकता है झंकार !

धूप–छाँह से पल–छिन अनुपम,
आँख–मिचौनी खेल रहे हम।

अश्रु-हास दोनों से सजता जीवन का शृंगार !

किरण - करों से उषा जगाती !
थकन दिवस की निशा सुलाती।

तम-प्रकाश दोनों से चलता जगती का व्यापार !



उच्छ्‌वास

आँसू मेरे, मीत तुम्हारे !

मेरी छाँह, प्रकाश तुम्हारा !
मेरी आह, सुवास तुम्हारा !

प्राणों की धड़कन बन जाती
पायल का संगीत तुम्हारे !

आँसू मेरे, मीत तुम्हारे !



तुम उतनी मीठी, जितनी जाड़े की धूप सुनहली !

बाट जोहते प्राण तुम्हारी
गयी विरह की रात।
दुख पर सुख की मधुर-पुलक-सा
आया मिलन - प्रभात।

तुम उतनी मीठी, जितनी जाड़े की धूप सुनहली !

प्यास न जाती मन की, होते
सरस न शुष्क अधर - दल;
फिर भी बड़ा मधुर लगता है
बिछुड़े नयनों का जल।

तुम उतनी मादक, जितनी पावस की बूँदें पहली !

ठिठुर - सिकुड़ कर पंछी सत्वर
चले नीड़ की ओर।
प्रिया - अंक में सिमट सो गया
मानव - जग का शोर !

तुम उतनी एकान्त-शान्त, जितनी जाड़े की रात !

दिवा - निशा की जलन - तपन से
ऊबा जग अविराम।
चाह रहा है कहीं शान्ति से
कर लेना विश्राम।

तुम उतनी मादक, जितना ऊँघता ग्रीष्म का पात !



इक्कीस

आओ, तुम्हें छिपा लूँ मन में !

सलज तुम्हारे अश्रु - विन्दु पर
जग का सुख सौ बार निछावर।

भर लूँ रूप–सुधा को निर्मल
कब से प्यासे, विकल नयन में !

आओ, तुम्हें छिपा लूँ मन में !

सागर मचल रहा कूलों में।
चंचल भ्रमर बँधा फूलों में।

तुम भी सुनो प्राण की धड़कन
आकर बाँहों के बन्धन में !

आओ, तुम्हें छिपा लूँ मन में !

जीवन–पथ पर तो अनजाने,
अपने हो जाते बेगाने !

मिलती जाती रात प्रात से,
छिपता जाता चाँद गगन में !

आओ, तुम्हें छिपा लूँ मन में !



बाइस

क्रूर जमाना, दूर ठिकाना, आओ, हम - तुम गालें, दो क्षण !

नयी उमर की बाढ़ न रोको
बढ़ती, हौले बढ़ जाने दो !
तट यौवन के दोनों प्यासे—
लहरें आकुल चढ़ जाने दो !

जलते होठ, मचलती बाँहें, आओ, रस बरसालें, दो क्षण !

कैसी शोभा है निर्मोही
पीते-पीते प्यास बढ़ रही !
क्यों न तुम्हारी धड़कन मेरे
दिल की धड़कन चिपक पढ़ रही !

तन को मन पर, मन को तन पर, आओ, प्राण, लुटालें, दो क्षण !

माना मेरे रूप-रंग पर
जनम-जनम की हो दीवानी !
अंग-अंग पर प्यार निछावर
करती मुझ पर हो तुम रानी !

फिर कैसा संकोच, लिपट कर जग का ज्ञान, भुलालें, दो क्षण !



तेइस

मैं निर्झर की कल-कल धुन हूँ, तेरा मन पाषाण है।
मेरी–तेरी अनजाने बस, इतनी–सी पहचान है।
—फिर भी जग हैरान है!

मेरे प्राणों की धड़कन में
मेरा बालम खो गया;
जैसे तारों के सरगम पर
सारा आलम सो गया।

पत्थर को भी मोम बनाता व्याकुल उर का गान है।
—इसका मुझे गुमान है!

मैं क्या जानूं, दुनिया वालो,
मंदिर–मस्जिद का पता ?
मेरे दिल में ही रहता है
मेरे दिल का देवता।

मैं अपने को देख रहा जो, यह भी तेरा ध्यान है।
—इतना मुझको ज्ञान है!

पतझर-वन से ज्यों उड़ जाता
चुपके कोकिल बोल के,
'मन का पंछी उड़ जाता है
तन का पिंजड़ा खोल के।'

विरह-मिलन में पर हम दोनों हरदम एक समान हैं!
—फिर कैसा व्यवधान है ?

मैं सावन की रिमझिम-रिमझिम,
तू बिजली का हास है।
मैं करील की डाल लुटी-सी,
तू दानी मधुमास है।
मेरे आँसू की. चकमक में तेरी ही मुस्कान है।
—यह क्या कम अहसान है!

अमर रहेंगे गान, रहेगी
यह आँसू की धार भी।
जब तक है संसार, रहेगा
मेरा-तेरा प्यार भी।
केवल मेरा तन दुनिया में दो दिन का मेहमान है।
—नश्वर बस, परिधान है!



चौबीस

दो क्षण सुख पा सका, बहुत है !

बन न सके यदि तुम पूनम हो,
चाँद दूज के ही क्या कम हो ?

जीवन की रजनी में प्रिय यदि
दो क्षण को आ सका, बहुत है !
दो क्षण सुख पा सका, बहुत है !

यौवन का यह भरा घड़ा है।
मन का तार–तार बिखरा है।

ऐसे असमय में कोशिश कर
दो क्षण भी गा सका, बहुत है !
दो क्षण सुख पा सका, बहुत है !

जब जीवन का एक सहारा
नहीं प्राण तक लगता प्यारा;

तय करने को मंजिल अपनी
दो क्षण दुख पा सका, बहुत है !
दो क्षण सुख पा सका, बहुत है !



चूम रहीं लहरें पूनम को, चूम रही धरती आकाश !
चूम रहीं किरणें शतदल को, चूम रही परती मधुमास !
कौन समझता है, दुनिया में कितना मँहगा है उल्लास !

पल-छिन-छिन दिन मास बना,
जोहते बाट व्याकुल सागर को,
हाय, कहीं तब सुधि आयी
परिचित आते-आते निशिकर को।

आग भरा पानी का मन है, कौन करे सहसा विश्वास !
कौन समझता है, दुनिया में कितना मँहगा है उल्लास !

यह दूरी का राज कि लगता,
मिलते धरती और गगन हैं !
क्षितिज-अधर पर लगता जैसे—
मिलते दो-दो प्राण मगन हैं !

यह दुर्भाग्य जगत क्या समझे, अपना घर ही बना प्रवास !
कौन समझता है, दुनिया में कितना मँहगा है उल्लास !

नैश तिमिर के साथ रही, गुमसुम
रोती जलजों का पाँती !
और कहीं तब फटी विकल हो
प्रात: अरुण-गगन की छाती !

एक क्षीण मुस्कान बनाने, मिटते कितने हैं उच्छ्वास !
कौन समझता है, दुनिया में कितना मँहगा है उल्लास !



विदा-लहर

विदा, किसी पत्थर पर अर्पित
मृदुल-सुमन-उपहार !
विदा, किसी विरहिन विधवा पर
गुमसुम यौवन-भार !

छब्बीस

तुम हो पास, कि जितनी मोहन की बंशी-धुन बावरी !
तुम हो दूर, कि जितनी ब्रज से है मथुरा के गाँव री !
दूर जमीं, आकाश नहीं है–
मन की दूरी, दूरी है !
अपने छल - छद्मों को दुनिया
क्यों कहती मजबूरी है ?
प्रेम निभाना, आग पचाना एक, सलोनी साँवरी !
क्या अपराध हुआ तुम बदली,
बदली जैसे जेठ की !
नेह तुम्हारा चंचल उतना,
जितनी पतियाँ रेत की।
मैं मरुथल में चाह रहा क्यों हाय, चलाना नाव री !
तुम शैशव की मीत, दुपहरी
में यौवन की छोड़ रही !
ओ मालिनि, अपनी बगिया की
कलियाँ क्यों खुद तोड़ रही ?
फूल-फलों की डाली निष्ठुर, देती केवल छाँव री !
तुम हो पास, कि जितनी मोहन की बंशी-धुन बावरी !



सत्ताइस

लगता है कैसा - कैसा तो !

कुछ न समझ में बात आ रही—
दिवस जा रहा, रात आ रही ।

कोई बैठा है खँडहर पर
जैसे सारा अपनापन खो !
लगता है कैसा - कैसा तो !

तीखी धूप, शुष्क पुरवाई !
यह सारी रौनक अलसाई !

रह रहकर सुन चीलों का रव
मन मेरा उठता है रो रो !
लगता है कैसा - कैसा तो !

जब थोड़ा मन को बहलाता,
एक प्रश्न मुझको दहलाता—

कौन भाग्य की सघन कलिमा
मिटा सका आंसू से धो-धो ?
लगता है कैसा - कैसा तो !



अठाइस

आँखों की गंगा - यमुना में, यौवन एक पिपासा !
लौट रहे पंथी पनघट से क्यों प्यासा का प्यासा ?

ये अषाढ़ के दुर्लभ बादल
रिम-झिम, रुन-झुन पानी !
किन्तु पपीहा ध्यान न देता
मिटने का अभिमानी !

जीवन को आबाद करेगी, लुटने की अभिलाषा ।
यौवन एक पिपासा !

गन्ध कली की दिशि-दिशि में
जो प्यार पवन बन ढोता,
वही निठुर बिखरा पंखुड़ियाँ
बन की पलक भिगोता !

तन से शलभ कि मन से बाती, प्रियतम की परिभाषा ।
यौवन एक पिपासा !

दिन में जलना, रात विहँसना,
भाग्य बड़ा अम्बर को !
पीने का कुछ मोल नहीं, यदि
हो सन्तोष अधर को !

हाय, व्यथा को गीत बनाती प्रिया-मिलन की आशा।
यौवन एक पिपासा !

शूल - फूल दोनों में बुलबुल
आकुल रोती - गाती !
धूप-छाँह की प्यास एक-सी
मानव को तड़पाती !

जीवन एक चाँदनी, जिसमें आभा और कुहासा।
यौवन एक पिपासा !



उन्तीस

क्या रहस्य है, तुम उदास हो ?

आये कितने संकट के क्षण ।
सहे सभी तुमने निर्भय बन ।

पर चुप कब बैठी तुम बोलो
इस प्रकार, इतनी निराश हो ?
क्या रहस्य है, तुम उदास हो ?

कहो न मैं कैसे घबड़ाऊँ ?
कैसे इस दिल को समझाऊँ ?

जब पूनम—हासिनी ले रही
रह - रह लम्बी - सी उसाँस हो ।
क्या रहस्य है, तुम उदास हो ?

क्या माँगे मरुथल का राही ?
(तट पर भी कब मिटी तबाही !)

जब सागर के अन्तस्तल में—
ही धू - धू जल रही प्यास हो ।
क्या रहस्य है, तुम उदास हो ?



तीस

भेद छिपाने से खुलता है।
करने को क्यों भस्म, अनाड़ी
फूँक रहे हो तुम चिनगारी?

पावक-कण को गलत न समझो,
सदा बुझाने से जलता है।
भेद छिपाने से खुलता है।

तुम न करो इतनी नादानी!
बन जाने दो मन को वाणी।

दबा दर्द ही उबल-उबल कर
चुपके पलकों से ढलता है।
भेद छिपाने से खुलता है।

राज़ पंक का विमल कमल में।
है विराग के राग अतल में।

संयम में ही प्रकट हुआ—
करती मानव की दुर्बलता है।
भेद छिपाने से खुलता है।



एकतीस

देख रहा नयनों का दर्पण।

भले तुम्हारे बन्द अधर हैं,
फिर भी आकुल प्यार मुखर हैं।

झुकी पलक भी कह देती है,
मन का चिर गोपन सम्भाषण।
देख रहा नयनों का दर्पण।

कैसे कहूँ दुराव तुम्हें प्रिय!
लगता सदा अभाव तुम्हें प्रिय!

तुम चुप हो, चुप रहो;
कह रही सब कुछ है प्राणों की धड़कण!
देख रहा नयनों का दर्पण।

अजब नयन के शीशे झलमल!
बिम्बित होते मन भी चंचल!

यौवन का मधुमास बन रहा
हाय, आज आँखों का सावन!
देख रहा नयनों का दर्पण।



बत्तीस

तो तुम चाह रही जाना ही ?

मिलन-प्रहर आँसू में बदले।
उजड़ा बसने के ही पहले।

चाह रही फिर व्यर्थ धीर दे
क्यों इस मन को बहलाना ही !
तो तुम चाह रही जाना ही ?

प्रेम न हिलता जड़ दर्शन से !
मिटी न प्यास तुहिन के कण से !

चाह रही हो प्रबल भावना
को तर्कों से समझाना ही !
तो तुम चाह रही जाना ही ?

सुख के पल बस याद बनेंगे।
प्यार - दुलार विषाद बनेंगे।

रह जायेगी प्रीत तुम्हारी
इस जीवन का अफसाना ही !
तो तुम चाह रही जाना ही ?



तेतीस

तोल-तोल कर बोल रही तुम !

मन की बात न वाणी में है ।
क्यों गति-रोध रवानी में है ?

हो जा रही उलझती, जितना
ही रहस्य को खोल रही तुम !
तोल-तोल कर बोल रही तुम !

मैं मिट जाऊँ, खेद न तुमको ।
सत्य - झूठ में भेद न तुमको ।

अपनी दुर्बलता से मेरा
निश्चल हृदय टटोल रही तुम !
तोल-तोल कर बोल रही तुम !

बोल तुम्हारा, मेरा लेखा ।
खुद से अलग तुम्हें कब देखा ?

कथन मूल्य रखता क्या मेरा,
चुप रह भी अनमोल रही तुम !
तोल-तोल कर बोल रही तुम !



चौतीस

मेरी क्या परवाह तुम्हें है ?

तुमको कब पहचान व्यथा की ?
झेला कष्ट सदा एकाकी !

मेरे दुख में कहो आज तक
आई कुछ क्या आह तुम्हें है ?
मेरी क्या परवाह तुम्हें है ?

जीत सका तुमको न प्यार से ।
हिल न सका पत्थर पुकार से !

मेरी कुछ फरियाद सुन सको,
इतनी भी कब चाह तुम्हें है ?
मेरी क्या परवाह तुम्हें है ?

प्रकृति तुम्हारी सबसे न्यारी ।
तुम्हें बाँह की छाँह न प्यारी ।

भली लगी कब सुलभ प्रेम की
मेरी निर्मल राह तुम्हें है ?
मेरी क्या परवाह तुम्हें है ?



पैंतीस

आखिर बने हो क्यों आज गुमसुम !
मैं न कहूँगा, रुक कर रहो तुम !
मन की बिछुड़ते तुमको कसम है, चुप ही रहो, लेकिन मुस्कुराओ !
काँटे बिछाकर है फूल सोता।
छाया न होती, दीपक न होता !
चाहे य'मेरी फरियाद भूलो, लेकिन न भूलों को तुम भुलाओ !
जाओ ! नयन की क्षमता भुलाती।
आओ ! हृदय की ममता बुलाती !
सुनता रहूँगा ध्वनि मैं निरन्तर, चाहे निकट से गाओ न गाओ'!
मन में, गगन में, मरु में, पवन में,
कण-कण भुवन में, तन में, भवन में—
मिलता रहेगा मुझको उजेला, चाहे कहीं भी दीये जलाओ !
तुम जा रहे, पूनम-सा गगन से।
तुम जा रहे, सौरभ-सा सुमन से।
रोको नयन की बरसात रोको, पंकिल न मंजिल का पथ बनाओ !



छत्तीस

अपना प्यार रखो अपने तक !

यों मेरे मरु - पथ में आकर
सूख चुके हैं कितने सागर !

सो दृग के निर्झर की निर्बल
अपनी धार, रखो अपने तक !
अपना प्यार रखो अपने तक !

सुनकर कोकिल का मधुमय स्वर,
सिसका पतझर का आँगन-घर ।

सोई पीर जगाने वाला
हृदय उदार, रखो अपने तक !
अपना प्यार रखो अपने तक !

पाकर करुणामय दो वाणी,
फूटी दृग की विकल रवानी !

दुख में तोष दिलाने वाला
यह अधिकार, रखो अपने तक !
अपना प्यार रखो अपने तक !



सैंतीस

हो कैसे विश्वास तुम्हारा ?

रुके न पल भर भी प्राणों में !
प्रकट हुए मेरे गानों में !

आँसू बनकर ढल जाने का
है अब तक इतिहास तुम्हारा !
हो कैसे विश्वास तुम्हारा ?



अड़तीस

इन नयनों के नीर, सँभालो !

क्या है लाभ व्यथा कहने से ?
भावुकता - सरि में बहने से ?

छलक न जाये आँसू बन कर
द्रवित हृदय की पीर, सँभालो !
इन नयनों के नीर, सँभालो !

सुख के बजते तार न पूरे।
सभी मिलन - संगीत अधूरे।

दुर्दिन के ही आघातों से
जीवन का मंजीर, बजा लो !
इन नयनों का नीर, सँभालो !

रहती घन में विद्युत् - रेखा।
बिना ज्योति के तिमिर न देखा !

क्षीण डोर से आशा की तुम
अपने मन की धीर, बँधा लो।
इन नयनों के नीर, सँभालो !



उन्चालीस

आँसू को तुम तोल सकोगी ?

अपनी पलकों पर क्या मेरे
आँसू को तुम तोल सकोगी ?

नापा गया किरण के कर से
धीर समुन्दर का कब पानी ?
बता सकी कब जलन बादलों
को बिजली की क्षणिक जवानी ?

मेरी अकथ व्यथा को क्या तुम
तुतले स्वर से बोल सकोगी ।

क्या पहचाने निशा उषा—
अधरों पर बलिदानों की लाली ?
बाँध सकी कब ज्योति - धार को
अपने बन्धन में अँधियाली ?

अपने अज्ञानों से मेरा
क्या रहस्य तुम खोल सकोगी ?

जो न भुला दे सुध-बुध तन की
वह जादू से भरा गीत क्या ?
मैं न मानता प्रीत, कि जिसमें
हृदय सजग हो हार - जीत का ।

अपनी चेतनता से मेरी
दुर्बलता ले मोल सकोगी ?



चालीस

नयनों ने पूछा प्राणों से किसकी यह आज विदाई है?

करने किसका अर्चन - पूजन,
करने किन चरणों का सिंचन,

अनजाने आँखों में मेरी गंगा - यमुना लहराई है?

अपने, मेहमान बने जाते!
सम्मुख, अब ध्यान बने जाते!

यह लुटी साँझ दिन के वियोग में मेरी ही परछाई है।

होते अनमोल बिदा के क्षण।
टुक रुको आज मेरे क्रन्दन!

पहला अवसर जीवन का, जब वेदना सघन मुस्काई है।



अपने आँसू लौटा लो तुम !
मेरे प्राण, सरल नयनों से
चुप यह भेद बता डालो तुम—

सब कुछ देकर भी मैं सब से
छिपा रहा था जिसको कब से,

उस निधि को यों मैं न चाहता
नाहक आज गँवा डालो तुम !
अपने आँसू लौटा लो तुम !

सागर की टूटी कगरी कब ?
भरी छलकती है गगरी कब ?

बन्धन में भी चिर असीम बन
लघुता आज मिटा डालो तुम !
अपने आँसू लौटा लो तुम !

यह कैसी होगी नादानी—
जग-सागर में दो कण पानी !

व्यर्थ नयन की राह न फूटो
मेरे अन्तर के छालो, तुम !
अपने आँसू लौटा लो तुम !



कल जाओगी, आज प्यार के
कुछ तो गीत सुना दो !

जान चुका हूँ, तुम जाओगी
जीवन होगा भार।
खो जाएगी विरह-निशा में
सुख की ज्योतिर्धार।

पर कुछ क्षण के लिए अमा को
तो पूर्णिमा बना दो !

तुम न रहोगी, दुर्दिन से
करना होगा अभिसार !
औ' आँसू से करुण जवानी
का होगा शृंगार !

अभी तनिक तो रूठे मन को
चुपके किन्तु मना दो !

करलो जितना कर सकती हो
जी भर खुलकर प्यार।
कल से तुम तक पहुँच न सकता
मेरा हाहाकार !

कुछ न कहूँगा, चाहे मुझको
व्यथा-भार जितना दो !

★

तेतालीस

मुझको नहीं, भूल को मेरी रखना हरदम याद !

दो प्राणों के बीच प्रेम से
दूरी जब घट पाती,
जाने - अनजाने कितनी ही
भूल - चूक हो जाती।

मेरी जड़ता तुमको कितनी देती रही विषाद !

जब - जब चुभते शूल,
प्रबल फूलों की होती चाह।
आता पावस मधुर कि जब
बढ़ती वसुधा की दाह।

तम में ही सुन्दर लगता चार दिनों का चाँद !

सपनों से ही होगी दुनिया
मेरी तो आबाद।
मेरी व्यथा हँसेगी, भूलें
जब भी होंगी याद।

बस इतनी-सी भीख कि मेरी इतनी ही फरियाद—
मुझको नहीं, भूल को मेरी रखना हरदम याद !



चौवालीस

क्या दूँ तुमको आज निशानी ?

मेरे पास बचा ही क्या है ?
मेरा तुम्हें रुचा ही क्या है ?

और न तुमको भा सकता है
इन नयनों का खारा पानी !
क्या दूँ तुमको आज निशानी ?

जहाँ रहो आबाद रहो तुम !
सुख - सागर में सदा बहो तुम !

तुम्हें दुआ देती है मेरी
जलकर भी मासूम जवानी !
क्या दूँ तुमको आज निशानी ?

कभी निभाता नहीं प्रणय है,
लेकर लौटाता न हृदय है,

—अब तक तो सुनता आया हूँ
परदेशी की यही कहानी !
क्या दूँ तुमको आज निशानी ?



हँसने का अभ्यास कर रहा !

जिसे समझ नद बढ़ता आया,
वह तो निकला लू की माया।

अपने सपने पर ही करना
अब मुझको विश्वास पड़ रहा।
हँसने का अभ्यास कर रहा !

अपने कर से मधुवन उजड़ा।
लेकिन मेरा दुख कब उमड़ा ?

शिल्पकार अपनी प्रतिमा का
हो जैसे उपहास कर रहा !
हँसने का अभ्यास कर रहा !

जब न बरसती आँखें प्यासी,
दुनिया देती है शाबासी;—

"कैसा साधक है, मस्ती से
पतझर को मधुमास कर रहा !"
हँसने का अभ्यास कर रहा !



४ छेयालीस

तुम रूठो, संगीत न रूठे!

घुट - घुट जलना नहीं सजा है।
—इसका लौ को ज्ञात मजा है।

तुम जाओ, पर संग तुम्हारे
जाने को यह प्राण न छूटे!
तुम रूठो, संगीत न रूठे!

इस जीवन के प्यारे - प्यारे
टूट चुके हैं सपने सारे।

पर इतनी ही अभिलाषा है—
उर - वीणा का तार न टूटे!
तुम रूठो, संगीत न रूठे!

मिटा चुका दुनिया अपनी हूँ।
लुटकर भी मैं आज धनी हूँ।

सदा घात में रहने वाला
जग न नयन के मोती लूटे!
तुम रूठो, संगीत न रूठे!



सैंतालीस

कैसे कहूँ, भुला पाऊँगा ?

पतझर में पातों का मर्मर,
मधु ऋतु में बन कोकिल का स्वर—

प्राणों पर तुम छा जाओगी !
कैसे कहूँ, भुला पाऊँगा !

बनकर चाँद, गगन से आकर,
सिर्फ नहीं मादक कलियों पर,

मरुथल पर भी मुस्काओगी !
कैसे कहूँ, भुला पाऊँगा ?

जीवन के हर कण में गुमसुम,
खुली पलक पर भी चुपके तुम

सपने बन कर आ जाओगी !
कैसे कहूँ, भुला पाऊँगा ?



अड़तालीस

मेरे अरमानों के मुर्दे बोलो कौन उठा सकता है ?

बड़े जतन से ढोना होगा,
है सपनों की राजकुमारी !
इसका भार वहन कर सकता
हृदय लुटा जो बना भिखारी !

कफन याद का कितना लम्बा
बना हृदय का हार, खड़ा हूँ !
अपने उजड़े हुए नीड़ का
तिनका ले तैयार खड़ा हूँ !

पर बाकी सामान चिता का देखूँ कौन जुटा सकता है ?

मैं रो सकता नहीं, मौन यह
जग के क्रन्दन से क्या कम है ?
पी लेना आँसू दुर्दिन में
तरल अग्नि-कण से क्या कम है ?

मैं पंथी हूं, जिसकी छाया
से भी मंजिल घबराती है !
जग की झूठी ममता मेरे
तक आने में शरमाती है ।

फिर मेरे उजड़े मरघट पर नंदन कौन लुटा सकता है ?

बन जाना निर्दोष कला है;
दुनिया भूल छिपा पाती है।
मेरा यही गुनाह, कि दिल की
बात अधर तक आ जाती है।

कौन हृदय ऐसा है बोलो
जिसे न सूनापन खलता है!
कौन जवान कहेगा उसके
भीतर प्यार नहीं पलता है?
एक चिरन्तन सत्य प्रेम है, मुझे न विश्व झुठा सकता है?



उनचास

जा न सकोगी इस बन्धन से !

मेरे जग की रीत नयी है।
परिवर्त्तन की प्रीत नहीं है।

लेकर सुरभि न उड़ सकती हो
भ्रमरी, तुम मेरे मधुवन से !
जा न सकोगी इस बन्धन से !

तुम नयनों में, बसी 'प्राण में।
तुम सपनों में, मिलन-गान में !

आँखों से भी ओझल होकर
छिप न सकोगी मेरे मन से !
जा न सकोगी इस बन्धन से !

तुमसे अलग न सत्ता मेरी।
काया सदा प्राण की चेरी।

अलग न होगा दीप छाँह से
कह दे कोई आज मरण से !
जा न सकोगी इस बन्धन से !



पचास

यह संसार विधाता तुमने कितनी बार बसाया होगा;
पर न तुम्हारी आँखों में करुणा का जल लहराया होगा !

विद्युत् के धागों से सीते
तुम नभ का गीला अम्बर हो !
दाता, तुम माया की बंशी
में भरते जीवन का स्वर हो !

यों ही नवल प्रकृति का उपवन कितनी बार बसाया होगा;
पर न तुम्हारा मन पतझड़ की डालों ने उलझाया होगा।

स्रष्टा, क्या निर्माण कि अपनी
रचना से अनमेल रहे तुम !
दोष भला क्या मिट्टी की
प्रतिमा का, जिससे खेल रहे तुम ?

माना तुमने बहुत दर्द इन नादानों से पाया होगा;
तुम्हें ध्यान निज नादानी का, पर बेदर्द न आया होगा।



वियोग-लहर

अश्रु, अमृत - कण;
व्यर्थ न जीवन-मंथन !
जन्म-मरण के बीच
विरह, मृदु बन्धन !

"अनेक बार प्यार से तुझे पुकार कर थका,
प्रणय, विरह-उदधि अपार पर न पार कर सका!
हृदय-मुकुर विशाल में तुझे निहारने झुका!"

"अभी जवान हो, उमीद का न यों कतल करो!
मनुष्य हो, न प्रेम-पंथ पर समाज से डरो!"

"नसीब का लिए जुआ प्रशान्त घूमता रहा!
कि पी नशा थकान का, प्रमत्त झूमता रहा!
कि बन विवश लहर, मरण-कछार चूमता रहा!"

"न हो निराश, प्रेम माँगता सहस्र दान है!
कि शीत - घाम, शूल-फूल प्रेम में समान हैं!"

"दिया न प्राण का जले, बयार बन, सुहागिनी!
निशाँ न नेह का रहे, अँगार बन सुभाषिणी!
सरोज - कामना गले, तुषार बन, सुहासिनी!"

"असह्य यह असीम वेदना कि तुम मचल उठे!
कि ताप से हिमाद्रि भी अचल, विकल पिघल उठे!"



आज अकेला हूँ, गाने दो।

मुझसे दूर कली सुकमारी!
मुझसे दूर शूल की क्यारी।

सुख - दुख दोनों से उठ ऊपर
मुझको शान्ति तनिक पाने दो!
आज अकेला हूँ, गाने दो!

बुरे अगर छूटें, तो छूटें।
भले अगर रूठें, तो रूठें।

इस जीवन के सूनेपन को
स्वर-सिहरन से भर जाने दो!
आज अकेला हूँ, गाने दो!

प्याला से पीड़ा जाती है।
तारों पर मीरा गाती है।

मुझे न रोको, मुझे न टोको
आज स्वयं को बिसराने दो!
आज अकेला हूँ, गाने दो!



तिरपन

इस प्रकार है घिरा अँधेरा—
पता नहीं, है कहाँ सबेरा !
ऐसे असमय में ही मेरा साथी छूट गया।
डूबा चाँद रात बाकी है।

ऊपर तारों का स्वर विह्वल।
तूफानों में गाते तरु - दल।
मैं क्या गाऊँ, बजूँ कि जीवन-सरगम टूट गया।
डूबा चाँद रात बाकी है।

सोती है रजनी की धड़कन।
शान्त हो गया जग का जीवन।
मुझसे मेरे जीवन का सपना भी रूठ गया।
डूबा चाँद रात बाकी है।



सुनता हूँ, हो गया सबेरा !

जिसकी रात प्रात ले आती,
उसको भिन्न विहाग - प्रभाती !

पर जो करती पलक प्रतीक्षा,
उसके हित क्या ज्योति-अँधेरा ?
सुनता हूँ, हो गया सबेरा !

रही निशा यों व्यर्थ न रोती,
दमक उठे शबनम के मोती !

विहँस उषा ने किरण - करों से
कुमकुम - रोली सदय बिखेरा !
सुनता हूँ, हो गया सबेरा !

खुली चपल खगदल की पाँखें,
खुलीं शिथिल शतदल की आँखें,

दूर गये राही, मंजिल की
आशा में तज रैन - बसेरा !
सुनता हूँ, हो गया सबेरा !

माँझी ने सुन खग की बोली
अपनीं लंगर होगी खोली !

लहरों में पर रुका हुआ है
मेरे जीवन का यह बेरा ।
सुनता हूँ, हो गया सबेरा !



मुझसे पूछ रहा है सावन—
"तुमसे भी क्या बिछड़ गया है
कोई अपना प्रिय जीवन - धन ?

मेरी तो आँखों की प्याली,
ढाल रही भू पर हरियाली;

पर क्यों तन-मन जला तुम्हारा
रहे तुम्हारे नयन-अमृत-कण ?

करती मेरी कसक तड़ित बन
भ्रान्त पथिक का मार्ग-प्रदर्शन ।

मानव - सुख चिर नश्वर, चंचल
मानव की आहें भी निर्धन !

हम दोनों फिर भी समान हैं,
रूप भिन्न हैं, एक प्राण हैं ।

बरस एक - से रहे निरन्तर
लोचन के घन, घन के लोचन !"



बहुत दिन तक बड़ी उम्मीद से देखा, तुम्हें जलधर !
मगर क्या बात है ऐसी, कहीं गरजे, कहीं बरसे !

जवानी पूछती मुझसे
बुढ़ापे की कसम देकर,
'कहो क्यों पूजते पत्थर
रहे तुम देवता कहकर ?'

कहीं तो शोख सागर है मचलता भूल मर्यादा,
कहीं कोई अभागिन चातकी दो बूंद को तरसे !
कहीं गरजे, कहीं बरसे !

किसी निष्ठुर हृदय की याद
आती जब निशानी की,
मुझे तब याद आती है,
कहानी आग - पानी की !

किसी उस्ताद तीरन्दाज के पाले पड़ा जीवन,
निशाने साधना दो - दो, पुराने एक ही शर से !
कहीं गरजे, कहीं बरसे !

नहीं जो मन्दिरों में है,
वही केवल पुजारी है।
सभी को बाँटता है जो,
कहीं वह भी भिखारी है।

प्रतीक्षा में जगा जो भोर तक तारा, मिटा-डूबा;
जगाता पर अरुण सोये कमल-दल को किरण-कर से !
कहीं गरजे, कहीं बरसे !



सन्तावन

बरस गये लोचन के घन, पर हँसी न प्राणों की हरियाली।

रिमझिम सावन के मृदु जलधर,
आते रस की गंगा लेकर,

लहराती, पाती नवजीवन वसुधा की मृत डाली-डाली।
हँसी न प्राणों की हरियाली।

आँख-मिचौनी बादल के सँग
खेल रहे बिजली के अँग-अँग।

पर, छाई मेरे तन-मन पर केवल सूनी सी अँधियाली।
हँसी न प्राणों की हरियाली।

पा बूँदों के कर से सिहरन,
उभर उठा सरिता का यौवन।

किन्तु रही रीती की रीती मेरे जीवन की लघु प्याली।
हँसी न प्राणों की हरियाली।



अन्ठावन

साथी मेरा सूनापन ही !

देख प्रगति मेरे चलने की,
छिपा लिया मुँह तारो ने भी ।

मुझको राह दिखाते केवल
पिया-मिलन को विकल नयन ही !
साथी मेरा सूनापन ही !



फिर भी प्यारा मधुमास मुझे !

मेरा मधुवन मरघट बनकर
आया है लेकर चिर पतझर ।

जग - आँगन की कलियाँ महमह
फिर भी देती उल्लास मुझे ।
फिर भी प्यारा मधुमास मुझे !

छूटा मेरा जीवन - साथी ।
बुझ गयी उमंगों की बाती ।

फिर भी पथ दिखलाया करता
तारा - गुम्फित आकाश मुझे ।
फिर भी प्यारा मधुमान मुझे !

मैं एकाकी हारा - हारा,
चलता हूँ किस्मत का मारा ।

फिर भी राहों की लू - लपटें
कर सकतीं नहीं हताश मुझे !
फिर भी प्यारा मधुमास मुझे !



साठ

आया है पतझार बताने—

"मैं दानी, शोषित, हत निर्धन।
उजड़ गया है मेरा मधुवन।

पीले पत्तों के मर्मर में
सदा गा रहा फिर भी गाने!
—आया है पतझार बताने।

यह बसन्त की चढ़ी जवानी—
मेरी ही तो है कुर्बानी।

मुझे नहीं है गम, यदि जग ने
मेरे तत्त्व नहीं पहचाने!
—आया है पतझार बताने।

कल के सुख - सपने, सोने दो!
आज बहुत दुख है, होने दो।

सुख - दुख में अन्तर पाते हैं
कब सच्चे दिल के दीवाने?"
—आया है पतझार बताने।



एकसठ

यह निर्मम संध्या की बेला !

धीरे - धीरे चन्द्र - किरण पर
उतरी दिन की थकन चरण धर।

ऐसे करुण अतिथि का मैं भी
कैसे कर सकता अवहेला ?
यह निर्मम संध्या की बेला !

नीड़ों में सो गये विहग - दल,
तजकर मधुर स्वप्न का आँचल !

मैं ही क्यों सूनी पलकों से
देख रहा तारों का मेला ?
यह निर्मम संध्या की बेला !

नरम - गरम चुप अश्रु बहाती,
बुझो मोमबाती भी जाती।

इस दुनिया में क्या जलने को
मैं ही बचता शेष अकेला ?
यह निर्मम संध्या की बेला !



बासठ

जीवन में आते ये क्षण भी !

हैं रह जाते प्यासे - रीते,
भरे-भरे रिम-झिम लोचन भी !

जब बन जाती बीती घड़ियाँ,
तरल - विकल मोती की लड़ियाँ,

कठिन अभाव मिटा देता है,
तब प्राणों का सूनापन भी !
जीवन में आते ये क्षण भी !

जब सुधियों के वातायन से
आते प्रिय तुम स्वर-सिहरन-से,

हृदय नहीं बहला पाता है
मरघट क्या, फिर नन्दन वन भी !
जीवन में आते ये क्षण भी !



बुरा हूँ मैं कि दर्पण बन गया सारे जमाने का !
भली हो तुम कि पंछी बन गयी अपने निशाने का !

किया साकार, जिसको विश्व
ने समझा निरा सपना;
चितेरा हूँ,—न लेकिन आँक
पाया रूप जो अपना !

तरी हूँ मैं, पता जिसको न खुद अपने ठिकाने का !

मधुर तुम इन्द्रधनुषी रेशमी
आभा क्षितिज-मम की !
बरस कर मिट गयी जो, मौन
मैं हूँ साँस वह घन की !

भला अधिकार क्या मुझको तुम्हें अपना बनाने का !

न पीकर भी तुम्हें जाना
तुम्हारा स्वाद कैसा है !
किसी के प्यार पर लुटना-
लुटाना एक-जैसा है !

घृणा तो मद भरा जादू तुम्हारा है—लुभाने का !



चौसठ

ये जीवन के चौबीस बरस !
पतझार सिहाता है आता,
मधुऋतु जाती हरबार तरस ।

है लाख बधाई आशा को,
जीवन की नयी पिपासा को !

जिसकी प्रेरणा लिए अब तक
बढ़ते हैं मेरे चरण विवस ।

है सफल धरा के जीवन पर,
अपवर्ग-स्वर्ग नित न्योछावर !

देवत्व लुटाया जा सकता है
मानवता पर सहज विहँस ।

जाने को सुख की मंजिल पर,
दुख का पाथेय सदा सुन्दर;

विश्वास यही, करता आया
प्राणों का मरु आबाद सरस।

यह जन्म-दिवस क्रन्दन का क्षण ?
या, स्वागत-अभिनन्दन का क्षण ?

बस रहे जवानी, जब तक हूँ;
चाहिए नहीं दिन शिथिल सहस।
साँसों की शहनाई बजती !
बारात ज़िन्दगी की सजती।

लो, मृत्यु-प्रिया से मिलने को
बढ़ते हैं पल-पल, रैन-दिवश !
ये जीवन के चौबीस बरस !



जिसके श्री - चरणों में अर्पित जीवन का प्रतिपल
आज उसी के मन में उठते शंका के बादल;
पड़े फिर कैसे मन को कल ?

पढ़ना ही पड़ता है मन को
आँखों की भाषा में !
जीना ही पड़ता है मरु को
जलधर की आशा में !

हरे प्राण मेरे थिर जिसकी आँखों ने चंचल,
उसे दीखता आज वासना-सा हूँ मैं कज्जल !
पड़े फिर कैसे मन को कल ?

ठुकरा सुलभ, मधुर उपवन को,
हुआ कली का एक !
बना अन्तरा तुन्हें बाँधली
मैंने, बनकर टेक।

जिसे मान मन्दिर, छोड़ा पत्थर-प्रतिमा-अंचल,
उसे प्रीति लगती है मेरी, धागा-सी दुर्बल !
पड़े फिर कैसे मन को कल ?



छिआसठ

एक पलरे पर निठुर संसार का दिल,
दूसरे पर अँट न पाता प्यार मेरा;
इस जमाने के तराजू पर पुराना,
कौन माने, जिन्दगी तोली न जाती !
कौन जाने, वेदना बोली न जाती !

आग–पानी पंथ पर मिलता न क्या है !
जब जवानी का कदम उठता नया है !

फूंक कर पथ प्रेम में चलना मना है,
आह भरकर प्रेम में जलना मना है;
प्रकृति का उपहास मानव कब समझता–
पत्थरों की जड़ रगों में बन रवानी,
कौन माने, है बहा करती जवानी !

पूर्णता अधिकार की, बन्धन नहीं है !
हृदय मेरा चित्र है, दर्पण नहीं है !

है वही इन्सान, जिसके होंठ पर
हैं गान, जीवन के समर में;
और जिसके हृदय में विश्वास है यह—
जिन्दगी का काफला चलता रहेगा,
प्यार का दीया मधुर जलता रहेगा !

विश्व की शंका, निराशा—प्रेरणा है।
पीर मेरी जिन्दगी की साधना है।

दो जलन जितनी हृदय चाहे—
भला होगा, भला होगा, भला होगा !
यह जवानी का खरा सोना निखरता
ही रहेगा दर्द पाकर, ताप पाकर !
गीत होंगे अमर, जग के शाप पाकर !



पिक ने बाँधा मलयानिल को, सीपी ने सागर को,
पर तुमने तो प्रिय बाँध लिया नयनों से प्राणों को !

सागर की हलचल बँध न सकी
कूलों की बाँहों से।
अम्बर के आँसू थम न सके
वसुधा की दाहों से।

पर मेरे जीवन की हरदम विपरीत रही धारा—
पीड़ा में तुमने बाँध दिया मेरे मधुगानों को !

मेरे अन्तर से जब जग की
निर्ममता टकराई,
शीशे के दिल से पत्थर की
आवाज निकल आई—

'आँसू को है हँसना पड़ता दुनिया की आँखों में,
क्या यह कुछ कम अभिशाप मिला मेरे वरदानों को ?'

सजती है रजनी काली भी
तारों के हारों से।
पूजे जाते पाषाण यहाँ
अनगिन शृंगारों से।

कहते मुझको अवतार लोग मृदुता, सुन्दरता का
पर आँसू ने ही प्यार किया मेरे अरमानों को !



मैं बजता हूँ, किन्तु निकलती तुमसे है झंकार !

बीन बजाना भूल गया मैं,
जब से मन ही तार बन गया।
छोड़ी तट की आशा, जब से
जीवन ही मँझधार बन गया।

मैं गाता हूँ, किन्तु गीत के तुम केवल आधार !

नित मजार पर गगन दिवस के,
देता अगणित कुसुम चढ़ा रे !
पर रजनी - रानी के बनते
शशि बिन्दी, ये हार सितारे !

मैं सजता हूँ, किन्तु देखता जग तुम में शृंगार !

डगमग पग ये, थका बटोही,
पंथ अश्रु - बूंदों से पंकिल !
मिलन तुम्हारा ही तो मेरे
एक मात्र जीवन की मंजिल !

मैं खेता हूँ नाव, मगर तुम हो मेरा उस पार !



मेरी होली, आज दिवाली !

अरमानों के रंग - विरंगे,
जलते हैं ये मौन पतंगे।

आँसू ने मेरी आँखों को
ऐसी निष्ठुर बाती बाली !
मेरी होली, आज दिवाली !

कूक रही कोयल मधुवन में।
झूम रहे तरु मलय - पवन में।

मेरे गीतों के सँग भी तो
नाच रही पीड़ा मतवाली !
मेरी होली आज दिवाली !

जन-जन के तन-मन पर लाली।
मेरे जीवन में अँधियाली।

बस न सकेगी क्या प्राणों की
मेरी भी यह कुटिया खाली ?
मेरी होली आज दिवाली !



मेरी आहों को क्यों दुनिया
मधुगान समझती—क्या जानूँ ?

जब चाँद किरण के मृदुकर से
रजनी का उर सहलाता है,
ऊपर लहरों को देख सभी
कहते हैं, सागर गाता है।

लाचारी को ही क्यों दुनिया
मुस्कान समझती—क्या जानूँ ?

सुनकर पुकार दुख - दर्द - भरी
कितने के हृदय सहज हिलते ?
आँसू के मोती लुटा सकें,
ऐसे दानी कितने मिलते ?

पाषाणों को ही क्यों दुनिया
भगवान समझती—क्या जानूँ ?

जग की रंगीन सचाई पर
सपने पहचाने भी न गये।
हैं रूप परायों के ऐसे,
अपने पहचाने भी न गये !

अभिशापों को ही क्यों दुनिया
वरदान समझती—क्या जानूँ ?



इकहत्तर

किसकी सुन पड़ती स्वर-सिहरन ?—

"कब आओगे मोहन, बोलो, कब आओगे मोहन ?
बाट जोहते कब से हारे पथराये ये लोचन ?

श्याम, साँवरे घन के पट पर
बिजली ने आँकी छवि सुन्दर।

आह, मिटीं ये भी प्रियतम का रूप दिखाकर क्षण भर !

एक सहारा याद तुम्हारी !
सुने कौन फरियाद हमारी ?

खींच न जो हम तक पाया है, तुम्हें हमारा क्रन्दन !

कुंज - गली रोती है खाली।
सूनी पड़ी कदम की डाली।

लुटा-लुटा-सा खोज रहा तुम को सारा वृन्दावन !"
किसकी सुन पड़ती स्वर - सिहरन ?



तुम न आओगी, तुम्हारी याद आती ही रहेगी !

टिक सके अरमान के हैं
महल बे-बुनियाद किसके ?
कठिन घड़ियों में विरह की
घर हुए आबाद किसके ?

पर तुम्हारी सुधि तुम्हें नित पास लाती ही रहेगी !

तुम गयी उपहार मेरे
प्राण को पतझार देकर।
औ' सुकोमल पलक-दल पर
आँसुओं का भार देकर।

पर जवानी मिलन के सपने सजाती ही रहेगी !

एक - सा यह तिमिर छाये
जा रहा मन पर, गगन पर।
किन्तु, मेरी आँख शत-शत
स्नेह की मधु बूंद भर कर—

नित तुम्हारी राह में दीपक जलाती ही रहेगी !
तुम न आओगी, तुम्हारी याद आती ही रहेगी !



तिहत्तर

आखरी पैगाम यह देती, रवि-किरण कहती गयी मुझसे–
सुबह के बिछुड़े हुए साथी, शाम आयी, तुम नहीं आये !

शाम आयी, श्याम की दूरी बताने के लिए !
शाम आयी, विश्व की पीड़ा सुलाने के लिए !

तिमिर देता है सुहाना हार तारों का दिशाओं को, मगर
चाँदनी में तुम जवानी की, सुधि–पटल पर मेघ बन छाये !
शाम आयी, तुम नहीं आये !

पल प्रतीक्षा का, अकेला बास मधुवन का !
मिलन का चिर सुख, मधुर अभिशाप यौवन का !

राम जाने, क्यों गरल को ही, अमृत कहती प्रेम की भाषा;
चाँद–सा, घनघोर पावस में आज मेरे अश्रु मुस्काये !
शाम आयी, तुम नहीं आये !

बीन जाती टूट, रह जाती मगर झंकार है !
मीत जाता छूट, रहते दर्द, रहते प्यार हैं !

रात भी बिछुड़ी अँधेरा ले, किन्तु आया प्रात ही तो क्या ?
हाय जल में भी मगन रहकर, नयन के ये नलिन कुम्हलाये !
शाम आयी, तुम नहीं आये !

आँसुओं का राज़, दिल की आग से सुलझा !
काँच का दिल क्यों किसी पाषाण से उलझा ?

तार टूटे प्राण के बजते रहे, पीर की सीमा मुखर जबतक रही,
क्या करूँ जो वेदना का मौन भी, साधना-संगीत बन जाये !
शाम आयी, तुम नहीं आये !



चौहत्तर

मुझको देखो, या देखो
दी
पा
व
लि
यों
को !
मैं नहीं रूप पर, सौरभ पर मरने वाला।
मेरा न प्रेम–पथ काँटों से डरने वाला।

दुनिया नादान, कहो न मुझे तुम रस–लोभी !
मुझको देखो, या देखो साधक
अ
लि
यों
को !
जग की निष्ठुरता की भी याद नहीं करता।
मैं ईश्वर से भी हूँ फरियाद नहीं करता।

पत्थर पर बलि देने वाले मालाओं की,
मुझको देखो, या देखो गुमसुम
क
लि
यों
को !
बुद-बुद से आकुल ही लहरें गुलजार सदा।
तारों से करती रही अमा शृंगार सदा।
सागर, अम्बर को नहीं देखता जग, केवल
देखा करता मेरी मस्ती,
रँ
ग
र
लि
यों
को !



प्यार की बीन पर पीर की रागिणी,
जो बजाने लगे, सो बजाते रहे!
अश्रु के मोतियों से जवानी मगन,
जो सजाने लगे, सो सजाते रहे!

तुम न जाने बिना हा, कहाँ पार है;
जिन्दगी की कठिन धार, मँझधार में—
कागजों की बना नाव अरमान को,
मुद बहाने लगे, सो बहाते रहे!

जो कि अंतिम मिलन में विधुर-भाल पर
चुम्बनों-सी प्रिया के खिंची रह गयी,
प्राण, उस आमरण याद की रेख को,
जो मिटाने लगे, सो मिटाते रहे!

जो बुलाये बिना, आगया हो अतिथि,
नेह की डोर में हा, बँधा आप ही,
आगमन की कथा वह करुण कंठ से
जो सुनाने लगे, सो सुनाते रहे!

बेवफाई तुम्हारी वफा बन गयी,
खार गुल का पहरुआ बना जिस तरह!
मोम के तन कि मन से शिला के पिया,
जो लुभाने लगे, सो लुभाते रहे!



कवि-की अन्य कृतियाँ

शेफालिका

नवीन संस्करण—कवि की प्रथम प्रकाशित पुस्तक—पुस्तक-भंडार, पटना के प्राचीन संस्करणों के बाद आधुनिक परिवर्द्धित संस्करण—इसी कृति को देख कर आज से वर्षों पहले हिन्दी के सभी महान् कवियों आलोचकों और पत्र-पत्रिकाओं ने इन्हें 'कल के महाकवि' की उपाधि दी थी और जिनके कोमल गीत आज गायकों और काव्य-प्रेमियों की जुबान पर चढ़े हैं। मूल्य १॥)

विभावरी

नयनाभिराम परिवर्द्धित संस्करण—हिन्दी का सर्व सम्मानित गीति-काव्य-हिन्दी-संसार के सभी सम्मानित साहित्यकारों ने जिसकी मुक्त-कंठ से प्रशंसा की है और महाकवि 'पंत' ने जिसकी भूमिका में इस तथ्य का प्रतिपादन खुले स्वर में किया है। मूल्य १॥)

जवानी और जमाना

हिन्दी की अत्यन्त प्रसिद्ध रचनाएँ—जिसकी आठ हजार से अधिक प्रतियाँ हिन्दी-पाठकों ने अपनायी हैं—भाषा की सरलता और भावों की उत्तमता सराहनीय है—'जवानी और जमाना', 'दीपक और छाया', 'राही और मंजिल', 'तुलसी और सावन', 'युग और गाँधी', 'पनघट और मरघट', 'बादल और वियोग', 'भगवान और इन्सान' आदि अनेक रचनाएँ श्रोताओं और पाठकों पर अमिट छाप छोड़ चुकी हैं—सैकड़ों प्रभावित नवजवानों ने इनके छन्द, भाव और काव्य-शैली का अनुकरण किया है—भारती भण्डार, इलाहाबाद के बाद 'राजीव-प्रकाशन' का नया संस्करण। मूल्य १॥)

कमल, बन्धूक और सूरजमुखी

समय-समय पर सामाजिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक विषमताओं के प्रतिक्रिया-स्वरूप लिखी गयीं कविताओं का मार्मिक संग्रह—मुक्त छन्द का

प्रवाह व्यंग्य को और भी चोटीला बनाता है। प्रथम संस्करण समाप्तप्राय:।

मूल्य १॥)

स्याही के फूल

लघुकथाओं का मौलिक संग्रह—पाँच पंक्तियों से लेकर चालीस पंक्तियों तक की कहानियाँ—नयी टेकनीक—नया प्रयोग। (यंत्रस्थ)

सिद्धि और प्रसिद्धि

विद्वान् कलाकार की आलोचना-शक्ति का अनूठा प्रमाण--डेढ़ दर्जन महत्त्वपूर्ण सैद्धान्तिक और व्यावहारिक आलोचनाओं का बृहत् संग्रह—छात्रों और आचार्यों के लिए समानरूप से उपयोगी। (यंत्रस्थ)

बच्चों के गीत

तीन भागों में कवि की सिद्धहस्त लेखनी द्वारा बच्चों के लिए लिखा गया सचित्र, सरल और उपयोगी साहित्य।

प्रकाशक—अजन्ता प्रेस लिमिटेड, पटना।

हिन्दी-वादों का स्वरूप और विकास

हिन्दी-काव्य में प्राप्त वादों का वैज्ञानिक अध्ययन—रहस्यवाद, छायावाद, प्रगतिवाद प्रयोगवाद आदि की विस्तृत मीमांसा—गवेषणात्मक बृहत् संग्रह।

प्रकाशक—सुहृद संघ, मुजफ्फरपुर।

सभी पुस्तकों के लिए पत्र लिखिए—

राजीव—प्रकाशन,

अरुणिमा, मुजफ्फरपुर



राष्ट्रभाषा का नया महाकाव्य—

कबीरदास

'किशोर' जी का आधुनिकतम ग्रन्थ—संत-साहित्य के सहृदय विद्वान की भावपूर्ण कविताएँ—आधुनिक युग की समस्याओं को ज्वालाभरी वाणी और उनका प्रेमभरा निदान—क्रान्ति और शान्ति के अद्भुत गीत—विविधछन्दों में नवीन कल्पनाएँ—सर्गों का अत्यन्त मनोवैज्ञानिक नाम-करण और विभाजन—अतीत का आधार, वर्त्तमान की प्रेरणा और भविष्य का संदेश—ज्ञान और भावना का मणि-कांचन संयोग—भूली-भटकी मानवता के लिए सही मंजिल का निर्माण—विभिन्न भाषाओं के कलाकारों द्वारा अति प्रशंसित यह महाकाव्य शीघ्र ही प्रकाशित होगा

